ब्रह्म-चिन्तन

[केवल उत्तम कोटि के साधकों के लिये]

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद अनन्तश्री विभूषित

स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
सन्त श्री आशाराम आश्रम
साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५.
फोन : ८६६३१०

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित

स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज

B.D.GOYAL

चित्तशुद्धि

चित्त की अशुद्धि से ही वस्तुओं का इतना महत्त्व बढ़ गया है कि साधक अपने अस्तित्व को ही भूल गया है। जो अभाव-रूप है उसका भाव स्वीकार कर लिया है और जिसमें सतत परिवर्तन है उसकी स्थिति को ही सत्य मान लिया है। यदि साधक विवेकपूर्वक जो भावरूप नहीं है उसका अभाव स्वीकार कर ले, जिसकी स्थिति नहीं है उससे विमुख हो जाय तो वर्तमान में चित्तशुद्धि होते ही सभी समस्याएँ स्वतः हल हो जायेंगी, ध्यानी का ध्यान अखण्ड हो जायगा, योगी योग से अभिन्न हो जायेगा तथा जिज्ञासु को तत्त्व-साक्षात्कार एवं प्रेमी को परम प्रेम की उपलब्धि होगी और फिर नव प्रकार के भय का अन्त हो
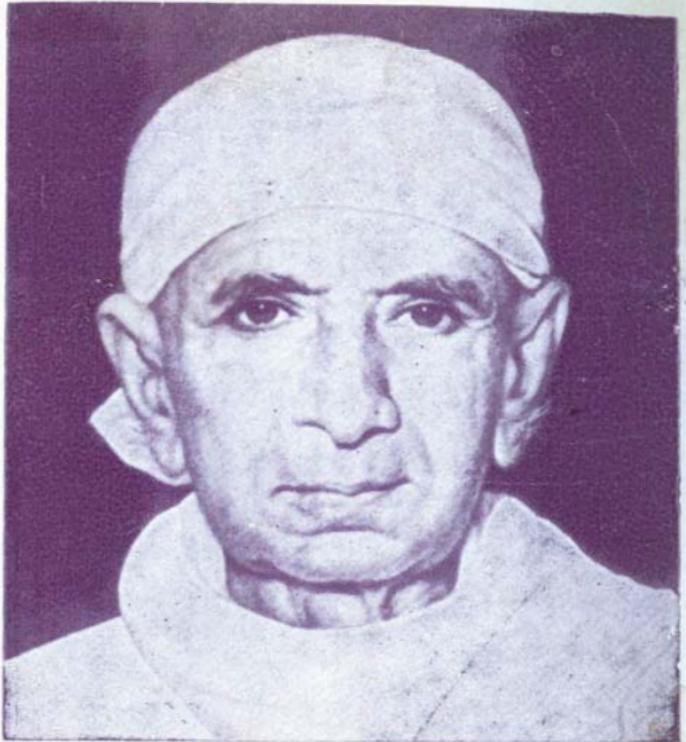
जायगा । फिर किसी दोष की उत्पत्ति ही न होगी । अर्थात् मन में स्थिरता, चित्त में प्रसन्नता और हृदय में निर्भयता सदा के लिये निवास करेगी । पर यह तभी सम्भव होगा जब कि साधक अपनी अनुभूति का आदर कर वस्तुओं के सम्बन्ध तथा स्मृति का अन्त करने में समर्थ हो जाय । यही चित्तशुद्धि का सुगम उपाय है ।

॥ ॐ ॥

ब्रह्म-चिन्तन

अभ्यास करने वालों के लिए पद्म आसन, स्वस्तिक आसन, सिद्ध आसन व मुक्त सिद्ध आसन की आवश्यकता है । इनमें से कोई एक आसन अभ्यस्त कर लेना चाहिए ।

१. सर्वप्रथम जिज्ञासु सीधे होकर कनिष्ठिका (छोटी अंगुली) से अंगूठा लगा कर मुट्ठी बन्द करके मन को शान्त कर दें । (अथवा, तर्जनी को अंगूठे से दबाकर ज्ञानमुद्रा बनाओ । इससे मस्तिष्क को भी लाभ होता है ।) कुछ समय के लिए मन के टिकनेपर एक अलौकिक, अनोखी, निर्विषयक शान्ति का दर्शन होगा । जब यह शान्तानन्द झलके तब ऐसी भावना करें कि यही आत्म-दर्शन हो रहा है, चूंकि आत्मा आनन्द-स्वरूप है । वह आनन्द-स्वरूप आत्मा पहले भी विद्यमान था, परन्तु चंचलता अथवा अनानन्दापादक आवरण से ढका हुआ था । वृत्ति की एकाग्रता ने उस आवरण को (पर्दे को) हटा दिया है । जैसे घूंघट रहने पर भी

व्यक्ति उपस्थित रहता है, उसी प्रकार आनन्द पहले से ही विद्यमान था, एकाग्र वृत्ति ने उसे केवल बेपर्दा अर्थात् जाहिर किया है। अतः यह सिद्ध हुआ कि आनन्द-स्वरूप आत्मा सदा विद्यमान है, इसी नाते शास्त्र इस आनन्द-स्वरूप आत्मा को 'सत्' कहते हैं।

इस आनन्द-स्वरूप आत्मा को कोई भी इन्द्रिय विषय नहीं कर सकती, चूंकि आत्मा में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि कोई भी गुण नहीं है। इसीलिए आनन्द-स्वरूप आत्मदेव श्रोत्र (कान), त्वचा, आंख, रसना और नाक की पकड़ में नहीं आ सकता। मन-बुद्धि तो बेचारे उस समय खुद ही शान्त (सत्त्वगुण में लीन) हो जाते हैं। इसीलिए यह आनन्द-स्वरूप आत्मा मन बुद्धि का भी विषय नहीं है। खुद या खुद को

विषय करना बन नहीं सकता, जैसे आंख आंख को नहीं देख सकती। इससे सिद्ध हुआ कि वह आनन्द-स्वरूप आत्मा किसी का विषय नहीं होता हुआ भी प्रत्यक्ष (जाहिर) है। इसीलिए आत्मा को 'स्वयं-प्रकाश' कहते हैं। स्वयं-प्रकाश को दूसरे शब्दों में 'चित्' कहते हैं। आत्मा आनन्द-स्वरूप है यह तो हम पहिले ही अनुभव कर चुके हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मा सत्, चित् और आनन्द-स्वरूप है।

वेदों में सत्, चित्, आनन्द स्वरूप ब्रह्म को कहा गया है। इससे सिद्ध हुआ कि 'मैं ब्रह्म हूं' इसमें मेरा अनुभव प्रमाण है। वेदों का भी यह संदेश है।

यजुर्वेद कहता है : 'अहं ब्रह्मास्मि।' मैं ब्रह्म हूं।

सामवेद कहता है : 'तत्त्वमसि।' वह तू है।

अथर्ववेद कहता है : 'अयम् आत्मा ब्रह्म'। यह आत्मा ब्रह्म है।

ऋग्वेद कहता है : 'प्रज्ञानं ब्रह्म।' चेतन आत्मा ब्रह्म है।

नानक साहब ने भी कहा है :

'सो प्रभु दूर नहीं प्रभु तू है।'

'जो ठाकर सद सदा हजूरे,

अन्धा जानत वां को दूरे।'

अतः अनुभव, श्रुति तथा सन्त-वाणी से यह सिद्ध हुआ कि अपने वास्तविक स्वरूप की दृष्टि से 'मैं सच्चिदानन्द-स्वरूप ब्रह्म हूं' ऐसी भावना करके अन्य चिन्तन समाप्त करके, शान्त होकर बैठ जायें।

२. फिर आंख खोलकर सामने किसी वस्तु में त्राटक करते हुए साक्षी-चिन्तन करें।

जैसे, सामने यदि भीत हो तो इसको देखकर मन में कहें कि 'मैं भीत नहीं हूँ, भीत से भिन्न भीत का साक्षी हूँ।'

३. पाँच भूतों का चिन्तन :

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। जैसे, 'मैं पृथ्वी नहीं, पृथ्वी से भिन्न, पृथ्वी का साक्षी हूँ।' ऐसे ही पाँच भूतों का साक्षी-चिन्तन करें।'

४. प्रिय पदार्थों का चिन्तन :

आंखें बन्द करके चिन्तन करें। जैसे, 'मैं लड़का नहीं, लड़के से भिन्न, लड़के का साक्षी हूँ।

५. शरीर के अवयवों का चिन्तन :

आँखें खोल कर पैर से सिर तक हर एक अंग का चिन्तन करें। जैसे, 'मैं पाँव नहीं, पाँव से भिन्न, पांवका साक्षी हूँ।'

६. नाम लेकर अपने शरीर का चिन्तन :

अपने शरीर का चित्र हृदय में लाकर चिन्तन करें। जैसे, 'मैं गोविन्दभाई नहीं हूँ। गोविन्दभाई नाम मेरे शरीर का है। मैं गोविन्दभाई से भिन्न, गोविन्दभाई का साक्षी हूँ।'

७. दस इन्द्रियों का चिन्तन :

पांच ज्ञानेन्द्रियां: कान, त्वचा, आंख, रसना और नाक। पांच कर्मेन्द्रियां: वाक्, हाथ, पांव, गुदा और उपस्थ। जैसे, 'मैं कान नहीं हूँ, कान से भिन्न, कान का साक्षी हूँ।'

८. पांच प्राणों का चिन्तन :

प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान। जैसे, 'मैं प्राण नहीं हूँ, प्राण से भिन्न, प्राण का साक्षी हूँ।'

यदि स्वस्थ व्यक्ति हों तो खाली पेट, ठण्डे समय साथ में प्राणायाम भी करें। दोनों नासिका-छिद्रों से धीरे धीरे श्वास को अन्दर खींचें और फिर अन्दाजन दुगने समय में धीरे धीरे श्वास को बाहर निकालें। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद फिर श्वास को अन्दर तथा बाहर रोक भी सकते हैं। पर ध्यान रहे कि श्वास अन्दर उतना रोकें, ताकि श्वास छोड़ने में जल्दबाजी न करनी पड़े, अर्थात् लेने वाले समय से अंदाजन दुगने समय में श्वास को आसानी से छोड़ सकें। इस प्रकार बाहर भी श्वास को उतना ही समय रोकें, ताकि फिर अन्दर खींचने में शीघ्रता न करनी पड़े। उस समय ध्यान केवल श्वास पर ही रहना चाहिये। फिर श्वास में एक अजपा जाप चल रहा है, उसे सुनना चाहिये।

वेद कहता है :

हकारेण वहिर्याति सकारेण विशेत पुनः ।
हँस हँस इत्यमूं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ।।

श्वास जब अन्दर आता है तब 'सो' ऐसा शब्द होता है और जब श्वास बाहर निकलता है तब 'हम्' का आवाज करता है। इसी प्रकार सभी प्राणी इसी 'सोऽहम्' मन्त्र का स्वभावतः बिना जपे जाप कर रहे हैं। साधक अजपा जाप में वृत्ति लगाकर फिर उसके अर्थ का भी चिन्तन करे। सो= वह अर्थात् सर्वत्र अस्ति, भाति व प्रिय रूप से व्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म। और यह 'हम्' शब्द वास्तव में 'अहम्' है। अहम्= मैं अर्थात् सबका द्रष्टा साक्षी सामान्य चेतन।

इस प्रकार "सोऽहम्' मन्त्र का अर्थ हुआ मैं (साक्षी) सच्चिदानन्द-स्वरूप ब्रह्म हूँ। इस

अर्थ का चिन्तन करके फिर यह भावना करें कि यह मन्त्र प्राण जप रहा है। मैं प्राण नहीं, प्राण से भिन्न, प्राण का भी साक्षी हूँ।

९. मन का चिन्तन :

मन को छुट्टी देकर साक्षी बन कर बैठ जायें। मन को कहें कि, 'हे मन! भाग जितना भागना है। आज मैं तेरा खेल देखने बैठा हूँ। जितनी चंचलता है, वह सब दिखा। बहादुर तो मैं तब मानूं कि जब तू ऐसी जगह भाग कर दिखा जहाँ मैं तुझे न देख सकूं। मन! तू तो एक बन्दर है। जैसे कोई बन्दर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदे तो उससे मेरे देखनेपन में कोई भी कमी नहीं आती। इसी प्रकार ऐ मन! चाहे तू चंचल हो अथवा एक जगह टिक

जाय परन्तु इससे मेरे देखनेपन में कोई कमी नहीं आती। फिर मैं तुम्हारा गुलाम क्यों बनूं?' ऐसा सोचते हुए मन की प्रत्येक अवस्था का साक्षी बनकर बैठ जायें।

१०. बुद्धि का चिन्तन :

समझना या निश्चय करना धर्म बुद्धि का है। बुद्धि जब समझती है अथवा नहीं समझती, मैं इन दोनों अवस्थाओं को जानता हूँ, इसलिये म बुद्धि नहीं, बुद्धि से भिन्न, बुद्धि का साक्षी हूँ।

११. संधि का चिन्तन :

जब एक वृत्ति (ख्याल) के बाद दूसरी वृत्ति उत्पन्न होती है, तब दोनों वृत्तियों के बीच में एक सन्धि अवस्था होती है। उस सन्धि अवस्था को बढ़ाना चाहिये। उन ख्यालों (Gap) को अर्थात वृत्ति के अभाव

को बढ़ाना चाहिये। जैसे फिल्म चलते चलते जब बीच में खाली फिल्म आ जाती है, तब पर्दे पर केवल शुद्ध लाईट प्रकाशमान होती है। इसी प्रकार वृत्ति के अभाव काल में अर्थात् सन्धिअवस्था में साक्षी अपने शुद्ध रूप में भासता है, उस समय और अन्य समय की भासमानता में केवल इतना अन्तर है कि वृत्ति की अवस्था में भासमानता आकृति सहित होती है और वृत्ति के अभाव काल में आकृति-रहित होती है। आकृति-रहित भासमानता ही शुद्ध चैतन्य स्वरूप साक्षी है, सो साक्षी मैं हूँ, ऐसी भावना करें।

१२. समाधि :

यह अभ्यास करते करते इतना तल्लीन हो जायें कि 'मैं'पन भूल जाय, केवल साक्षी आकार वृत्ति हा रह जाय। उस अवस्था को विचार समाधि कहते हैं।

१३. सच्चिदानन्द स्वरूप की भावना :

इस समाधि अवस्था में जो निर्विषय आनन्द भासता है वह आनन्द स्वयं प्रकाश एवं सत् है और वही आनन्द मेरा स्वरूप है, इसलिये मैं सत् चित् आनन्द स्वरूप हूँ, ऐसी भावना करें।

१४. ब्रह्म-चिन्तन :

सो सत् चित् आनन्द स्वरूप मैं केवल इस शरीर में ही व्यापक नहीं हूँ परन्तु सारे ब्रह्माण्ड में अस्ति, भाति व प्रिय रूप से जगमगा रहा हूँ। जहाँ जहाँ वृत्ति जावे वहाँ वहाँ नाम-रूप का बाध करके अर्थात् नाम-रूप को कल्पित समझकर बाकी शेष रहे हुए अस्ति, भाति व प्रिय रूप ब्रह्म का अभेद-भाव से चिन्तन करें अर्थात् जो सत चित् आनन्द स्वरूप ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है

वह सत् चित् व आनन्द स्वरूप ब्रह्म मैं (साक्षी) हूँ। इसी प्रकार जहाँ जहाँ वृत्ति जावे वहाँ वहाँ अभेद चिन्तन करते रहें। जब ऐसा चिन्तन स्वाभाविक होने लग जाय तब उसे सहज समाधि कहते हैं। यही परमावस्था है और यही कैवल्य मोक्ष का साक्षात् साधन है।

॥ ॐ शम् ॥

*

सहज-समाधि

जब हम किसी पदार्थ को देखते हैं तब वह पदार्थ भी प्रत्यक्ष कहलाता है तथा उसका ज्ञान भी प्रत्यक्ष कहलाता है। इसलिये प्रत्यक्षत्व दो प्रकार का हुआ : एक 'ज्ञान-गत' प्रत्यक्षत्व और दूसरा 'विषय-गत' प्रत्यक्षत्व।

ज्ञानगत प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक (संपादक) है 'वृत्ति-चेतन और विषय-चेतन का अभेद' और विषयगत प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक है 'वृत्ति-चेतन और विषय का अभेद'।

आकाश स्वरूप से एक होने पर भी घट व मठ की उपाधि से घटाकाश और मठाकाश के भेद से दो प्रकार का प्रतीत होता है, परन्तु घड़ा यदि मठ के अन्दर लाया जाय तो आकाश का औपाधिक भेद भी समाप्त हो जायेगा। अतः यह नियम हुआ कि जिन उपाधियों के भेद से उपहित का भेद होता है, उन उपाधियों के एक जगह आ जाने पर उपहित का भेद भी उस समय के लिये नहीं रहता। अतः जब वृत्ति विषय से मिलती है अर्थात् विषयाकार होती है तब वृत्ति और विषय

के एकत्र स्थित होने पर वृत्ति-चेतन और विषय-चेतन का अभेद होता है, तब वह अभिन्न चेतन अनावृत (बेपर्दा) होकर उस विषय रूप से भास जाता है, उस भासने को 'प्रत्यक्ष ज्ञान' कहते हैं।

यह भासमानता सामान्य रूप से सर्वत्र व्यापक है। जहाँ जहाँ वृत्ति पहुंचती है वहाँ वहाँ यह प्रत्यक्ष भासमानता-स्वरूप-चैतन्य-ज्योति पदार्थ के प्रत्यक्ष ज्ञान के रूप में भास जाती है। घड़े पर वृत्ति पहुँची तो वह चैतन्य घड़े के रूप में भासा; इस प्रकार घट-ज्ञान, पट-ज्ञान, शब्द-ज्ञान, स्पर्श-ज्ञान, रूप-ज्ञान, रस-ज्ञान, गंध-ज्ञान इन सब ज्ञानों में जो सामान्य (Common) ज्ञानतत्त्व है वह चैतन्य अखण्ड ज्योति ही आत्मदेव है। घडा कपडे में नहीं, कपड़-

घड़े में नहीं, शब्द स्पर्श में नहीं, स्पर्श शब्द में नहीं, परन्तु ज्ञान (भासमानता) सब में है। अतः ज्ञान के विषय परस्पर भिन्न हैं किन्तु ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान इस प्रकार स्वरूप से एक है। इस एक अखण्ड ज्ञान-स्वरूप चैतन्य तत्त्व के बारे में श्री गोस्वामीजी लिखते हैं : 'एक अखण्ड ज्ञान सीता-वर।' अर्थात् एक अखण्ड ज्ञान-ज्योति ही सीता (माया) के वर (पति=अधिष्ठान) राम अर्थात् आत्मस्वरूप परब्रह्म है।

उस भासमान स्वरूप परमात्मा को प्रकाशित करने के लिए अन्य किसीकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह स्वयं-प्रकाश है। स्वयं-प्रकाश पदार्थ कहते हैं उसको, जो किसी का विषय (object=कर्म) न होता हुआ भी प्रत्यक्ष हो। और यह

नियम है कि 'जैसे स्वयं-प्रकाश पदार्थ को प्रकाशित करने के लिए अन्य किसीकी आवश्यकता नहीं पड़ती उसी प्रकार स्वयं-प्रकाश पदार्थ में कल्पित पदार्थ को प्रकाशित करने के लिए भी अन्य किसीकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती।' जैसे सूर्य को प्रकाशित करने के लिए अन्य किसी प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती उसी प्रकार सूर्य की गोलाई को देखने के लिए भी अन्य किसी टार्च आदि के प्रकाश की आवश्यकता नहीं पड़ती। जैसे चन्द्रमा को देखने के लिए हमें अन्य दीपक आदि के प्रकाश की आवश्यकता नहीं रहती उसी प्रकार चन्द्रमा के अन्दर, कल्पित शश (खरगोश) के चिन्ह को देखने के लिए भी कोई टार्च आदि जलाना नहीं पड़ता। जैसे लाईट को

देखने के लिए अन्य लाईट को आवश्यकता नहीं होती तो लाईट में कल्पित सिनेमा-ब्रह्माण्ड को देखने के लिये भी अन्य किसी प्रकाश की आवश्यकता नहीं पड़ती। तथा जैसे साक्षी चेतन को जनवाने के लिए अन्य किसी चेतन की आवश्यकता नहीं पड़ती उसी प्रकार उस स्वयं-प्रकाश साक्षी चेतन में कल्पित स्वप्न-ब्रह्माण्ड को जनवाने के लिए भी अन्य किसी की आवश्यकता नहीं पड़ती।

जैसे सिनेमा का अधिष्ठान लाईट स्वयं-प्रकाश है तथा स्वप्न-प्रपंच का अधिष्ठान साक्षी स्वयं-प्रकाश है उसी प्रकार इस जाग्रत् प्रपंच का अधिष्ठान भासमान-स्वरूप परब्रह्म भी स्वयं-प्रकाश है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि जब यह नियम

है कि 'स्वयं-प्रकाश पदार्थमें कल्पित पदार्थ को जनवाने के लिए अन्य किसीकी आवश्यकता नहीं पड़ती' तो फिर स्वयं-प्रकाश ब्रह्म में कल्पित ब्रह्माण्ड को जनवाने के लिये वृत्ति की आवश्यकता क्यों? बिना वृत्ति के सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भासमान होते रहना चाहिए; परन्तु ऐसा होता नहीं है। वृत्ति बेचारी जिस पदार्थ तक पहुँचती है, बस उसीका ज्ञान होता है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का हमें ज्ञान नहीं होता। यदि ऐसा होता तो हम सब सर्वज्ञ होते।

इसका समाधान यह है कि: यद्यपि स्वयं-प्रकाश पदार्थ को प्रकाशित करने के लिए अन्य किसीकी आवश्यकता नहीं पड़ती परन्तु उसे बेपर्दा करना तो आवश्यक है। स्वयं-प्रकाश पदार्थ का अनावृत (बेपर्दा) होना ही उसका

जाहिर होना है। जैसे कोई सच्ची मणि कूण्डे के नीचे रखी हो तो उसे जाहिर करने के लिए हमें कूण्डे को हटाने की आवश्यकता पड़ती है परन्तु कूण्डे हटने के बाद फिर उस मणि को प्रकाशित करने के लिए अन्य किसी प्रकाशक की आवश्यकता नहीं पड़ती; ठीक इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड का अधिष्ठान परब्रह्म यद्यपि स्वयं-प्रकाश है परन्तु उस पर अविद्या का आवरण होने से वह स्वतः ब्रह्माण्ड रूप से नहीं भासता। उस आवरण को हटाने के लिये वृत्ति की आवश्यकता है। जिस पदार्थ तक वृत्ति पहुँचती है उस पदार्थ से उपहित चेतन के आश्रित अविद्या की निवृत्ति होती है तब वह विषय-उपहितचेतन अनावृत होकर स्वयं भासता हुआ उस विषयरूप से भी भास जाता है। वेद भी कहता है : 'तमेव

भान्तमनुभाति सर्वम्।' अर्थात् 'उस परम तत्त्व के भासते हुए सम्पूर्ण प्रपंच भी उसके पीछे उसके भास से भास जाता है।' फिर उस अनावृत चेतन को तथा उस अनावृत चेतन में कल्पित पदार्थ को प्रकाशित करने के लिये अन्य किसीकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती। अब चूंकि वृत्ति सर्वव्यापक न होने के नाते किसी सीमित विषय तक ही पहुँचती है, इसलिए उतना अनावृत चेतन भी उस सीमित विषय के रूप में ही भासता है, इसलिए जीव सर्वज्ञ न होकर अल्पज्ञ ही रहता है। ईश्वर की माया-वृत्ति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्यापक होने के नाते ईश्वर सर्वज्ञ है और जीवों की अन्तःकरण की वृत्तियाँ सीमित विषय तक पहुँचती हैं, इसलिए अनावृतता (बेपर्दगी) सीमित होने के नाते जीव अल्पज्ञ हैं।

अतः जब वृत्ति पुस्तकाकार होती है तब वृत्ति-चेतन और विषय चेतन का अभेद होता है और उस समय उस वृत्ति द्वारा पुस्तक-उपहित-चेतन के आश्रित आवरण (अज्ञान) का भङ्ग (निवृत्ति) होता है, तब वह अभिन्न चेतन अनावृत होकर स्वयं भासता हुआ, पुस्तक रूप में भी भास जाता है। उसी भासमानता को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। ध्यान रहे कि भासमानता के विषय (Objects) परस्पर भिन्न होने पर भी भासमानता, भासमानता (प्रतीति=ज्ञान) सब में समान है। यह सर्वत्र व्यापक भासमानता ही चैतन्य ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म है।

उसी समय विषय-गत प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक वृत्ति-चेतन और विषय का अभेद भी हो जाता है। अभेद याने अलग सत्ता का

अभाव; क्योंकि यह नियम है कि, 'अधिष्ठान की सत्ता से अध्यस्त की सत्ता अलग नहीं होती।' इस नियम के अनुसार विषय-चेतन (अधिष्ठान) की सत्ता से विषय की सत्ता अलग न होने से विषय का विषय-चेतन से अभेद है ही।

...और जब वृत्ति विषयाकार होने से वृत्ति-चेतन और विषय-चेतन अभिन्न हो गये तो उस समय के लिये विषय का अधिष्ठान जैसे विषय-चेतन है उसी प्रकार वृत्ति-चेतन भी हुआ; और अधिष्ठान की सत्ता से अध्यस्त की सत्ता अलग नहीं होती, इस नियम से उस समय के लिए वृत्ति-चेतन की सत्ता से विषय की सत्ता अलग नहीं रही। अतः इस नाते वृत्ति-चेतन और विषय का अभेद हुआ।

जब वृत्ति-चेतन का विषय से अभेद होता है तब विषय प्रत्यक्ष कहलाता है ।

इस बात को समझकर इस सहज समाधि का अभ्यास करना चाहिये कि जहाँ जहाँ वृत्ति जाती है वहाँ वहाँ वृत्ति-चेतन का विषय-चेतन से तथा विषय से अभेद होता है और वह अभिन्न-चेतन विषयरूप से भासता है । इस भासमानता का कभी अभाव नहीं होता । यह अखण्ड भासमान चैतन्य ही मेरा स्वरूप है यह बार बार दुहराते रहना चाहिये । इस प्रकार श्रवण, मनन व निदिध्यासन के बाद अपरोक्ष अनुभूति दृढ़रूप से हो जायेगी और इसी दृढ़ अपरोक्ष आत्मानुभूति से ही कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

भजन

सन्तो सहज-समाधि भली,
गुरु-प्रताप भयी जा दिन से,
सुरत न अनत चली, सन्तो....

आँख न मूंदूं कान न रूंदूं काया कष्ट न धारूं ।
खुले नैन मैं हँस हँस देखूं सुंदर रूप निहारूं ॥
०सन्तो....

कहूँ सो नाम सुनुं सोई सुमिरन,
खाऊँ पीऊँ सोई पूजा ।
ग्रहण त्याग एक सम पेखूं,
भाव मिटाऊं दूजा ॥ ०सन्तो....

जहँ जहँ जाऊँ सोई परिकरमा,
जो कुछ करूं सो सेवा ।
जब सोऊँ तब करूं दण्डवत,
पूजूं और न देवा ॥ ०सन्तो....

कहे कबीर ये उत्तम रहनी,
सो प्रकट कर गाई ।
सुख-दुःख परे परमपद दरसे
सोई सदा सुखदाई ॥ ०सन्तो....

ओंकार, ब्रह्म और आत्मा के चार पादों का कोष्ठक-चित्र (नकशा)

क्रमांक	(१)	(२)	(३)	(४)
ॐकार के मात्रा-रूप चार पाद	अकार	उकार	मकार	अमात्र
आत्मा के चार पाद	विश्व	तैजस	प्राज्ञ	जीव-साक्षी वा कूटस्थ
ब्रह्म के चार पाद	विराट्	हिरण्यगर्भ	ईश्वर	ईश्वर-साक्षी वा शुद्ध ब्रह्म
उपाधि	स्थूल	सूक्ष्म	कारण	स्थूलादि तीनों का अभाव
अवस्था	जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति	तुरीया

ॐकार द्वारा निर्गुण ब्रह्म का अहंग्रह-ध्यान

नक्शे में देखकर लय-चिन्तन द्वारा अहंग्रह-ध्यान करना चाहिये। लय-चिन्तन का यह नियम है कि 'कार्य उपादान-कारण से भिन्न नहीं होता परन्तु कारण-स्वरूप होता है।' जैसे जेवर स्वर्ण से भिन्न नहीं परन्तु स्वर्ण-स्वरूप होते हैं उसी प्रकार इस समष्टि ब्रह्माण्ड का कारण ब्रह्म है, अतः ब्रह्माण्ड ब्रह्म से भिन्न नहीं परन्तु ब्रह्मस्वरूप है। जैसे जब सारा बगीचा पृथ्वी-स्वरूप है तो एक पेड़ कहता है कि मैं भी पृथ्वीस्वरूप हूँ। इस प्रकार जब सारा ब्रह्माण्ड ब्रह्म-स्वरूप है तो मैं भी ब्रह्म-स्वरूप हूँ। इस

दृष्टि से जो ब्रह्म सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की जान है वह मैं हूँ; इस प्रकार के ध्यान को अहंग्रह ध्यान कहते हैं। ऐसा ध्यान ॐ का उच्चारण करते हुए करना चाहिये। ॐ के चार पाद हैं : [१] अ [२] उ [३] म् [४] अमात्र।

अ = विश्व-अभिन्न-विराट्। उ = तैजस-अभिन्न–हिरण्यगर्भ। म् = प्राज्ञ-अभिन्न-ईश्वर। अमात्र=सर्वत्र अस्ति, भाति व प्रियरूप से व्यापक सत्, चित् व आनन्द-स्वरूप ब्रह्म।

अब प्रत्येक शब्द का अर्थ संक्षेप में देखें।

(१) विश्व : व्यष्टि-स्थूल-अभिमानी अर्थात् भिन्न भिन्न स्थूल शरीर में अभिमान करने वाले को विश्व कहते हैं। विराट् : समष्टि

(सम्पूर्ण) स्थूल-ब्रह्माण्ड-सहित-चेतन को विराट् कहते हैं। इसका वर्णन गीता के ११ वें अध्याय में भी आया है। दोनों की उपाधि एक स्थूल होने से दोनों का परस्पर अभेद है।

(२) तैजस : व्यष्टि–(अकेले) सूक्ष्म शरीर में अभिमान करनेवाले को तैजस कहते हैं और समष्टि (सम्पूर्ण) सूक्ष्म-संसार-सहित-चेतन को हिरण्यगर्भ कहते हैं। दोनों की उपाधि एक सूक्ष्म होने से दोनों का परस्पर अभेद है।

(३) प्राज्ञ : व्यष्टि कारण शरीर (अविद्या) में अभिमान करनेवाले को प्राज्ञ कहते हैं और समष्टि-अविद्या-(माया)-सहित-चेतन को ईश्वर कहते हैं। दोनों की उपाधि एक कारण (प्रकृति) होने से दोनों का परस्पर अभेद है।

इस प्रकार पहले परस्पर अभेद चिन्तन करते हुए फिर लय-चिन्तन द्वारा सबका सच्चिदानन्द-स्वरूप अमात्ररूप परब्रह्म से अभेद करके अहंग्रह ध्यान करना चाहिए। जैसे: विश्व-अभिन्न-विराट तैजस-अभिन्न हिरण्यगर्भ से भिन्न नहीं परन्तु हिरण्यगर्भ स्वरूप है। वह हिरण्यगर्भ प्राज्ञ-अभिन्न ईश्वर से भिन्न नहीं परन्तु ईश्वर-स्वरूप है। वह ईश्वर, जीव-साक्षी-अभिन्न-ईश्वर-साक्षी परब्रह्म से भिन्न नहीं परन्तु परब्रह्म-स्वरूप है, वह शुद्ध ब्रह्म मैं हूँ अर्थात् मेरा वास्तविक स्वरूप है। इस प्रकार ॐ द्वारा निर्गुण ब्रह्म का अहंग्रह-ध्यान करना चाहिए।

॥ ॐ शम् ॥

जाग....जाग....जाग...

संयोग होगा कि नहीं इसमें सन्देह है लेकिन जिनका संयोग है उनका वियोग होगा कि नहीं इसमें कोई सन्देह नहीं। वियोग निश्चित है।

समय देकर मकान-दुकान गाड़ी-मोटर, जमीन-जायदाद, कपड़े-गहने, ऐहिक-पारलौकिक सुविधाएं पा सकते हो लेकिन सुविधाएं वापस देकर तुम खोया हुआ समय लौटा नहीं सकते। अतः समय सब से मूल्यवान है। इस मूल्यवान समय को ऊँचे से ऊँचे आत्म-परमात्म-चिन्तन में लगाकर अनन्त ब्रह्माण्डों के स्वामी हो जाइये, बेताज बादशाह हो जाइये।

वायुयान (हवाईजहाज) चलने का समय होता है, बस चलने का समय होता है, गाड़ी चलने का समय होता है लेकिन यह शरीर की गाड़ी कब चल देगे मौत के मुँह में, कोई पता नहीं। मृत्यु के समय का कोई पता नहीं। कभी भी, किसी भी समय, किसी भी जगह, किसी भी क्षण मृत्यु हो सकता है। मौत सिर पर है...कब हो जाय...? पता नहीं।

ऐसा समझकर परमात्मा का, अपने आत्मा का राज़ समझ कर अमरता के आसन पर बैठ जाओ। शरीर रुग्ण हो जाय, आँखें निस्तेज हो जाय, उससे पहले अन्दर का आरोग्य पा लो और ज्ञान की आँख खोल दो। कुटुम्बी तुम्हें स्मशान में पहुँचा दें, शरीर को आग घेर ले उससे पहले ब्रह्माग्नि से अज्ञान मिटाकर अमर हो जाओ।

कभी कभी स्मशान में जाकर अपने मनीराम को समझाओ। कभी घर बैठे ही उसे स्मशान की यात्रा कराओ।

पाने की इच्छा, करने की इच्छा और जीने की इच्छा चित्त को अशुद्ध करती है। जान लो महापुरुषों के चरणों में जाकर कि तुम्हारी कभी मौत होती नहीं। अतः जीने की इच्छा समाप्त हुई। सभी शरीरों से तुम ही कर रहे हो यह जाना कि करने की इच्छा समाप्त हुई। अपने आपको जान लिया तो आपने सब पाया हुआ ही है। चित्त शुद्ध हो जायगा, आत्मज्ञान हो जायगा तो अन्य लोगों की नजर से तो करते-लेते-देते दिखेंगे लेकिन अपने शुद्ध स्वरूप में कोई कर्तृत्वभाव नहीं आयेगा। कर्तृत्वभावना आने से भोक्तृत्व-भ्रान्ति नहीं उठेगी

जीवनमुक्ति का विलक्षण आनन्द....! सत्ता समान की निजी अनुभूति....! फिर वह गन्धर्व और किन्नर, देवी और देवता तुम्हारे कृपा कटाक्ष के लालायित रहेंगे ।

हे देवों के देव ! हे सूर्यों के सूर्य ! जाग....जाग....जाग....! ॐ....ॐ....ॐ....!

प्रातःकाल लगभग आधा सेर (२५० ग्राम) बासी जल नित्य-नियमपूर्वक धीरे-धीरे पी जाओ । यह 'उषा-पान' कहलाता है । इससे वात-पित्त-कफ त्रिदोष का नाश होता है, दस्त साफ होता है, पेट के विकार दूर होते हैं । बवासीर, प्रमेह, मस्तकवेदना, और पागलपन आदि रोग मिटते हैं । शरीर में बल, बुद्धि और ओज बढ़ता है ।

शरीर में बल, बुद्धि और ओज बढ़ेगा लेकिन तुम उसके भी साक्षी हो ।

★

हम वासी उस देश के
जहाँ पारब्रह्म का खेल ।

पूज्यपाद सन्त श्री आशारामजी बापू

ऐसा कोई लोक नहीं,
जहाँ दुःख न हो।
ऐसा कोई शरीर नहीं,
जिसकी मृत्यु न हो।
ऐसी कोई परिस्थिति नहीं,
जो कभी बदले नहीं।
ऐसा कोई संयोग नहीं,
जिसका कभी वियोग न हो।

अतः उन सब के लिए परिश्रम नहीं करना। चित्त को निर्वासनिक बनाकर निजस्वरूप नारायण में लगाना।